International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(6): 78-80

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(6): 78-80
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-09-2020
Accepted: 22-10-2020

डॉ. अमिता रेढू
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज, सन्तपुरा,
यमुनानगर, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अमिता रेढू
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज, सन्तपुरा,
यमुनानगर, दिल्ली, भारत

गुरु गोबिन्द सिंह का दार्शनिक चिन्तन

डॉ. अमिता रेढू

प्रस्तावना

मानव का आत्मिक एवं शारीरिक विकास वातावरण के अनुकूल ही होता है यदि वातावरण अच्छा है तो निश्चित ही किसी भी पुरुष में महापुरुष बनने की क्षमता आ सकती है।

इसी प्रकार के वातावरण में गुरु तेग बहादुर जी के गृह 26 दिसम्बर 1666 ई. को अर्द्धरात्रि के पश्चात् एक बजकर बीस मिनट पर सिखों के अंतिम आध्यात्मिक गुरु, त्रस्त मानवता के त्राता, मानव के मार्ग–प्रदर्शक, जाति–रक्षक, धर्म संरक्षक, राष्ट्र निर्माता, 'खालसा–पन्थ' के प्रवर्तक श्री गुरु गोबिन्द सिंह का जन्म हुआ। गुरु गोवन्द सिंह जी ने अपनी असाधारण प्रतिभा द्वारा फारसी, गुरुमुखी, संस्कृत, ब्रजभाषा आदि भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया। गुरु गोबिन्द सिंह का व्यक्तित्व अद्वितीय था। एक ओर वे सन्त थे, दूसरी ओर सफल सेनानी। उनके समग्र साहित्य के अध्ययन परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने वेद, पुराण, धर्मशास्त्रों का गहन अध्ययन किया था।

गुरु गोबिन्द सिंह का दर्शन अद्वैतवाद पर आधारित है। गुरु नानक देव, गुरु अर्जुन देव आदि गुरुओं ने एक ही ईश्वर को महत्त्व देते हुए उसे अजन्मा, अमर, सर्वलोकपालक, सृष्टिकर्ता आदि माना है।

'एक ओंकार सतिनामु'[1]

वेदों के अंतिम भाग के रूप ही वेदान्त दर्शन अर्थात् अद्वैतवाद का उद्भव है। वेदान्त शब्द का विग्रह 'वेदानाम् अन्तः इति वेदान्तः' के रूप में किया जाता है। वेदान्त वेद के अन्तिम ध्येय और कार्यक्षेत्र की शिक्षा देता है या उन उपनिषदों पर आधारित है जो वेद का अन्तिम भाग है।[2] वेद अन्तिम ध्येय ब्रह्म का प्रतिपादन करना है। 'वेदाः ब्रह्मात्मविषयाः।'[3]कठोपनिषद् में कहा गया है कि सभी वेद जिस तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं उसे संक्षेप में ओइम् कहा जाता है।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यद्च्छिन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।[4]

यह ओइम् शब्द ब्रह्म का वाचक है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी ब्रह्म को ही सभी वेदों के द्वारा वेदितव्य माना गया है।

'वेदैश्च सर्वैरहमेव विद्या।'[5]

शंकराचार्य का कथन है–'बृंहति बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म।[6] अर्थात् जो स्वयं बढ़ता है तथा प्रजा को बढ़ाता है वह ब्रह्म है। वे ब्रह्म को नित्य शुद्ध–बुद्ध–मुक्त स्वभाव, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् आदि के रूप में प्रतिपादित करते हैं। इस नामरूपात्मक जगत् की रचना, स्थिति और लय जिस सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् तत्त्व में होती है, वह ब्रह्म है।[7] छान्दोग्यपनिषद् में भी एक ही ब्रह्म की सत्ता दर्शायी गयी है। यथा–सर्वं खल्विदं ब्रह्म।[8]

उपनिषदों में आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं माना। वास्तव में ये दोनों एक हैं। यही अद्वैतवाद का सिद्धान्त है।

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्।[9]

शंकर का दर्शन अद्वैतवाद कहलाता है। उनकी दृष्टि में जीव और ब्रह्म में नितान्त अभिन्नता है। उनके सिद्धान्त का मूल मन्त्र है

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।[10]

शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म के दो रूप हैंमाया की उपाधि से युक्त और माया की उपाधि से विवर्जित। माया की उपाधि से युक्त होकर निर्गुण ब्रह्म सगुण बन जाता है, उसे ईश्वर की संज्ञा दी जाती है। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, अन्तर्यामी, जगत् का कारण और आनन्दमय है।[11]

अद्वैत वेदान्त का सिद्धान्त है कि विशुद्ध ब्रह्म ही एकमात्र परम सत् है। माया की उपाधि से युक्त होकर वह नानात्व को प्राप्त होता है। ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है ''इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।''[12] शंकरा चार्य का कथन है कि ब्रह्म और जीव अभिन्न हैं परन्तु उपाधि भेद से ब्रह्म विभिन्न रूपों में अवभासित होता है। ब्रह्मबिन्दूपनिषद् में भी कहा गया है

एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।
एकधा बहुधाचैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।।[13]

अर्थात् एक ही परमात्मा अलग–अलग प्राणियों में अवस्थित है। वह एक होते हुए भी अनेक रूप में ऐसे ही दिखाई दे रहा है जैसे चन्द्रमा एक होते हुए भी विभिन्न जलों में अनेक रूप में दिखाई देता है।

संसार के सभी धर्मों में परमात्मा के अस्तित्व का विश्वास किसी न किसी रूप में है। सिख गुरुओं में ईश्वर के रूप का प्रतिपादन अधिकांशतः प्रथम रूप में ही किया है। गुरुनानक देव ने गुरु ग्रंथ साहिब के मूल मन्त्र में उसके 'कर्त्ता पुरुष, निर्वैर, भयरहित, शत्रुतारहित, समय से परे और योनियों से परे' होने की बात कही है।[14]

गुरु गोबिन्द सिंह जी की दार्शनिकता का आधार भी अद्वैतवादी भावना है। ईश्वर के निराकार स्तुति का वर्णन इसका ज्वलंत उदाहरण है। उनकी दार्शनिक रचनाओं में ईश्वर, माया, जीव, मोक्ष आदि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। उनकी रचनाओं में शंकर के अद्वैतवादी एवं कबीर के रहस्यवाद की छाप स्पष्ट प्रतीत होती है।

उनका सर्वप्रथम दार्शनिक काव्य 'जापु' है। जापु का अर्थ है 'जपना' अर्थात् परमात्मा के विभिन्न गंणों का स्मरण करना। उन्होंने सर्वशक्तिमान्, निराकार ब्रह्म के प्रति आस्था प्रकट कर बार–बार उसे नमस्कार किया है। इस कृति का प्रारम्भ उस एक 'परब्रह्म' से हुआ है। शंकराचार्य के अनुसार गुरु जी ने उसका चिन्ह मात्र नहीं माना। वह जाति–पाति विहीन है। उसका कोई वर्ण रंग, रूप, रेखा, भेस आदि नहीं है। वह अचल मूर्ति एवं प्रचंड है।[15]

वह ईश्वर सच्चिदानंद, नेति, स्वयंभू एवं संबंधविहीन है। वह अकाल अर्थात् मृत्यु रहित है। उसकी कथा अकथनीय है। वह सब के गर्व को चूर करने वाला आदि रूप है। उसका रूप परम पवित्र है।[16] वह सब का जन्मदाता है। गुरु जी ऐसे सर्वशक्तिमान ईश्वर की वन्दना करते हैं –

नमो जीव जीवं नमो बीज बीजै
अखिजे अभिजे समसतं प्रसिजे।।[17]

गुरु जी ने बड़े ही सुन्दर रूप में ईश्वर के गुणों की व्याख्या करते हुए कहा है कि ईश्वर अरूप, अनूप, अजन्मा, अभेख, अनाम, निडर, अवर्ण, अनादि, अनन्त, अछूता, अलोक, अकर्म, अभ्रम, अगाह है।[18] ईश्वर एकरूप है किन्तु अपने रूप को अनेकता देता है। अन्त में सभी जीव उसी में विलीन हो जाते हैं। परमात्मा की वास्तव में एक ही मूर्ति है, परन्तु वह अनेक हो क्रीड़ा करता है और अन्त में पुनः एक रूप हो जाता है।

एक मूरति अनेक दरसन कीन रूप अनेक।
खेल खेल अखेल खेलन अंत को फिर एक।।[19]

गुरु जी के अनुसार वह ईश्वर सर्वव्यापी, शान्त रूप, त्रिगुणात्मक (सत्त्व, रज, तम), नरक उद्धारक, निष्कामी, सर्वसहायक, ब्रह्माण्डकर्ता, करुणानिधि एवं मोक्षदाता है।[20] इस प्रकार 'जापु' में अद्वैत ब्रह्म का ही जाप और उसी के विभिन्न कार्यों का वर्णन है।

उनकी एक ओर रचना अकाल स्तुति में अकाल पुरुष की स्तुति की गई है। उनके अनुसार सर्वलोह एवं अकाल पुरुष एक ही है। गुरु जी ने शस्त्र और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं माना। उनके अनुसार शस्त्र ही उनके रक्षक हैं।[21] इसमें भी गुरु जी ने ईश्वर को आदि, अविकारी, मातृ–पितृ विहीन, जन्म–मरण विहीन, त्रिकाली, जगतकर्ता, अनन्त कहा है।[22] गुरु जी ने आत्मा और परमात्मा को अभिन्न माना है। जीव और ईश्वर वास्तव में एक ही रूप हैं। जीव ईश्वर से ही उत्पन्न हो, अन्त में उसी में विलीन हो जाता है। जैसे एक नदी में कई बुलबुले उठते हैं परन्तु अन्त में एक ही जल कहलाते हैं। इसी भांति धूल उड़ती है अन्त में फिर धूल में ही समा एक हो जाती है। जिस प्रकार रात्रि दिवस में और दिवस रात्रि में समा जाता है उसी प्रकार प्राणी अकाल पुरुष से उत्पन्न हो पुनः उसी में समा जाता है। गुरु जी ने दोनों में एकरूपता स्वीकार की है

देहरा मसीत सोई पूजा ओ निवाज़ उई।
मानस है एक पै अनेक को भ्रमाऊ है।।[23]

अर्थात् मन्दिर और मस्जिद, पूजा और नमाज़ सब उसी एक की है, मनुष्य तो एक ही है परन्तु भ्रमवश वह अनेक दिखाई देता है। जैसे अग्नि से अनेक चिंगारियाँ और धूल से अनेक धूल कण उठ पुनः मिल एक हो जाते हैं, इसी प्रकार जीव परमात्मा से भिन्न हो फिर अन्त में उससे मिल एक ही रूप हो जाते हैं।[24]

अद्वैत वेदान्त का सिद्धान्त है कि ब्रह्म ही जीव रूप में प्रकट होता है। जीव और ब्रह्म में परमार्थतः कोई भेद नहीं है। छान्दोग्यपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म ही जीवात्मा में अनुप्रवेश करके नाम–रूप की अभिव्यक्ति करता है।[25] वह ब्रह्म इस सृष्टि की रचना कर इसमें प्रविष्ट हो जाता है। गुरु जी और भक्त नामदेव के दार्शनिक विचारों में भी समानता है। दोनों कवियों के विचारों में अद्वैतवाद के ही दर्शन होते हैं। नदी से उठी हुई तरंगे, झाग, बुलबुला आदि फिर उसी में विलीन हो एक ही रूप अर्थात् जल ही कहलाते हैं। दोनों के अनुसार जीव और ईश्वर अभिन्न हैं।[26] कबीरदास के अनुसार जीव ईश्वर का ही अंग है जो बाद में उसी का हो जाता है। केवल समय का फेर है जैसे पानी हिम होने पर अपना रूप कुछ समय के लिए बदल लेता है परन्तु अन्त में पुनः जल ही हो जाता है।[27]

गुरु जी ने प्रभु नाम स्मरण पर अधिक बल दिया है। यही एक मन्त्र है जिससे जीव सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो सकता है। उन्होंने बाह्माडम्बरों का घोर खण्डन किया है। ईश्वर जाप के लिए किसी बाह्य प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं, उसके लिए तो मन की तल्लीनता चाहिए। ईश्वर प्राप्ति के लिए ईश्वर के प्रति प्रेम का अधिक महत्त्व है। गुरु जी के अनुसार प्रभु–प्राप्ति प्रेम से ही संभव है। बिना उसके भजन के सब काल की गोद में सदा के लिए सो गए। गुरु गोबिन्द सिंह जी ने ज्ञान द्वारा मोक्ष की प्राप्ति बतलाई है। अज्ञानता के भ्रम में फंसे हुए जीव सदा अज्ञान रूपी अंधकार में भटकते रहते हैं।[28]

गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपने दार्शनिक काव्य में निर्गुण और सगुण दोनों पक्षों को लिया है परन्तु मुख्यता निर्गुण भक्ति को ही दी है। गुरु जी ने अपनी समस्त दार्शनिक रचनाओं में बार–बार उस अकाल पुरुष का ही स्मरण करने के लिए महत्त्व एवं बल दिया है। केवल वही एकमात्र अवलम्ब है जो कि इस संसार रूपी सागर से पार लगा सकता है। गुरु जी ने इन रचनाओं के द्वारा जीव को अकाल पुरुष के नाम–स्मरण में रत होने का संदेश दिया है।

सन्दर्भ

1. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ.1
2. संस्कृत–हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ. 976
3. श्रीमद्भागवत, 11.21.35
4. कठोपनिषद्, 1.2.15
5. श्रीमद्भगवद्गीता, 15.15
6. श्वेताश्वतरोपनिषद् (शांकरभाष्य), 1.1
7. ब्रह्मसूत्र (शांकरभाष्य), 1.1.1
8. छान्दोग्यपनिषद्, 14.1
9. ऐतरेयोपनिषद्, 2.1.1
10. ईशावास्योपनिषद्, डॉ. शशि तिवारी, पृ. 35
11. वेदान्तसार, खण्ड 7
12. ऋ., 6.47.18
13. ब्रह्मबिन्दूपनिषद्, 12
14. गु.ग्र.सा., पृ. 1
15. दशम ग्रन्थ, पृ. 1
16. वही, पृ. 3,5,10
17. वही, पृ. 4
18. वही, पृ. 2–3
19. वही, पृ. 3,5
20. वही, पृ. 3–10
21. वही, पृ. 11
22. वही, पृ. 11,13,15
23. वही, पृ. 19
24. वही, पृ. 19
25. छा., 6.3.2
26. दशम ग्रंथ, 19–20
27. कबीर ग्रंथावली, श्याम सुन्दर दास, पृ. 12
28. दशम ग्रंथ, पृ. 13,14,20।